सांस्कृतिक अस्मिता और स्त्री स्वर: मृणाल पांडे और इन्द्र बहादुर राई के कथा-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

शोधार्थी -मोहन महतो ।

सह -लेखक -डॉ विनोद कुमार ।

सारांश:

इक्कीसवीं सदी के हिंदी और नेपाली कथा-साहित्य में स्त्री चेतना, सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक अस्मिता के प्रश्न प्रमुख विमर्श के रूप में उभरकर सामने आए हैं। इस संदर्भ में हिंदी कथाकार मृणाल पांडे और नेपाली कथाकार इन्द्र बहादुर राई की कहानियाँ विशेष महत्त्व रखती हैं। मृणाल पांडे की रचनाएँ भारतीय स्त्री के व्यक्तिगत संघर्ष, पारिवारिक दबाव और सामाजिक प्रतिबंधों के यथार्थ चित्रण से सुसज्जित हैं। दूसरी ओर, इन्द्र बहादुर राई की कहानियाँ नेपाली बहुलतावादी समाज में स्त्री के सामूहिक और सांस्कृतिक परिवर्तन में सक्रिय भूमिका को उद्घाटित करती हैं।

यह तुलनात्मक अध्ययन दोनों रचनाकारों के कथा-संसार में स्त्री अस्मिता, सांस्कृतिक जड़ें और सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं को उजागर करता है। अध्ययन में यह स्पष्ट होता है कि मृणाल पांडे की कहानियाँ व्यक्तिगत और पारिवारिक संघर्ष के माध्यम से स्त्री की मानसिकता और अधिकार की पहचान पर केंद्रित हैं, जबकि राई की कहानियों में स्त्री सामूहिक चेतना और सांस्कृतिक संरचना के परिवर्तन की वाहक के रूप में प्रकट होती है। सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ, कथ्य, शिल्प और पात्र चित्रण के तुलनात्मक विश्लेषण से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि दोनों भाषाओं के कथा-साहित्य में स्त्री विमर्श और सामाजिक चेतना के प्रश्न समान विमर्श प्रस्तुत करते हैं। आधुनिक संदर्भ में यह अध्ययन स्त्री अस्मिता, सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक चेतना के वैश्विक विमर्श के लिए उपयोगी और प्रासंगिक सिद्ध होता है।

बीज शब्द:

स्त्री अस्मिता, सांस्कृतिक अस्मिता, सामाजिक परिवर्तन, तुलनात्मक साहित्य, हिंदी कथा-साहित्य, नेपाली कथा-साहित्य, मृणाल पांडे, इन्द्र बहादुर राई, स्त्री चेतना, पारिवारिक संघर्ष, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक पहचान, आधुनिक साहित्यिक विमर्श, बहुलतावादी समाज, साहित्यिक विश्लेषण |

भूमिका:

साहित्य समाज का दर्पण होते हुए उसकी सांस्कृतिक, सामाजिक और मानवीय संवेदनाओं का समग्र चित्र प्रस्तुत करता है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी और नेपाली कथा-साहित्य में स्त्री चेतना और सांस्कृतिक अस्मिता के प्रश्न अत्यंत प्रासंगिक बन गए हैं। इस संदर्भ में हिंदी कथाकार मृणाल पांडे और नेपाली कथाकार इन्द्र बहादुर राई की कहानियाँ विशेष महत्त्व रखती हैं। मृणाल पांडे की रचनाएँ भारतीय स्त्री के व्यक्तिगत संघर्ष, पारिवारिक दबाव और सामाजिक प्रतिबंधों की यथार्थपूर्ण

झलक प्रस्तुत करती हैं, जबकि राई की कहानियों में स्त्री सामूहिक चेतना और सांस्कृतिक संरचना के परिवर्तन की वाहक के रूप में उभरती है। यह तुलनात्मक अध्ययन न केवल दोनों कथाकारों की साहित्यिक शैली, कथ्य और पात्र चित्रण का विश्लेषण करता है, बल्कि स्त्री अस्मिता, सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक पहचान के समकालीन प्रश्नों को भी उद्घाटित करता है। हिंदी और नेपाली कथा-साहित्य में व्यक्तिगत और सामूहिक संघर्ष के माध्यम से स्त्री चेतना की प्रस्तुति दोनों भाषाओं के सामाजिक और सांस्कृतिक विमर्श को एक साझा मंच पर लाती है। यह अध्ययन वैश्विक स्त्री विमर्श और सांस्कृतिक चेतना के समकालीन दृष्टिकोण में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है।

मूल आलेख :

मृणाल पांडे की कहानी *"एक स्त्री का विदा गीत"* स्त्री-जीवन की सांस्कृतिक विडंबनाओं, अस्मिता-संघर्ष और परंपरा-आधारित जकड़नों को गहराई से उद्घाटित करती है। इसमें स्त्री की विदाई केवल घर से विदा नहीं, बल्कि उसके अस्तित्व, सपनों और इच्छाओं की विदाई भी बन जाती है। कहानी में सांस्कृतिक अस्मिता और स्त्री स्वर प्रमुख विमर्श बनकर उभरते हैं। विवाह भारतीय समाज की सबसे महत्वपूर्ण सांस्कृतिक संस्था है। लेकिन यह स्त्री के लिए केवल "नए जीवन का आरंभ" नहीं बल्कि अपनी पुरानी पहचान, संस्कृति और आत्म-अस्तित्व से विस्थापन भी है। कहानी में दिखाया गया है कि विवाह के समय स्त्री गीतों और रीति-रिवाजों में शामिल होकर "समाज की संस्कृति" को निभाती है, लेकिन उसी संस्कृति के भीतर उसकी अस्मिता हाशिए पर चली जाती है। "विदा गीत गाते हुए स्त्रियाँ दरअसल अपनी पीड़ा को हंसी-ठिठोली में छिपा देती हैं, मानो बेटी की विदाई उनका शाश्वत भाग्य हो।" (पांडे 55) यह पंक्ति स्पष्ट करती है कि सांस्कृतिक अनुष्ठान स्त्री की भावनाओं को सामूहिक रूप से ढँक देते हैं। कहानी स्त्री के स्वर को केवल पीड़ित या मौन पात्र के रूप में नहीं, बल्कि अनकहे प्रतिरोध के रूप में प्रस्तुत करती है। स्त्रियाँ विदा गीतों में अपनी भावनाओं को छुपाकर सामूहिक गान में बदल देती हैं। यह उनका सांस्कृतिक प्रतिरोध है, जहाँ वे परंपरा को निभाते हुए भी अपनी पीड़ा का साझा करती हैं। यहाँ स्त्री स्वर व्यक्तिगत नहीं, सामुदायिक बनकर सामने आता है। इस संदर्भ में विनोद कुमार शुक्ल लिखते है - "मृणाल पांडे "स्त्री जीवन की उन गहरी दरारों को भाषा देती हैं, जिन्हें समाज सामान्य और स्वाभाविक मानकर ढँकता आया है।" साथ ही डॉ. सुधा सिंह अपने ग्रन्थ *"हिंदी कहानी और स्त्री विमर्श"* लिखती हैं-"विदाई के गीतों में स्त्रियों की साझा पीड़ा और संस्कृति की विडंबना छिपी है। मृणाल पांडे ने इसे स्त्री अस्मिता के स्वरूप में रूपांतरित किया है।" मृणाल पांडे की यह कहानी विवाह जैसे सांस्कृतिक आयोजन के भीतर छुपी स्त्री की अस्मिता, पीड़ा और प्रतिरोध की आवाज़ को सामने लाती है। यह स्त्री स्वर को केवल रोने-गाने तक सीमित नहीं करती, बल्कि उसे सांस्कृतिक विमर्श का सक्रिय हिस्सा बनाती है।

मृणाल पांडे की यह कहानी विवाह जैसे सांस्कृतिक आयोजन के भीतर छुपी स्त्री की अस्मिता, पीड़ा और प्रतिरोध की आवाज़ को सामने लाती है। यह स्त्री स्वर को केवल रोने-गाने तक सीमित नहीं करती, बल्कि उसे सांस्कृतिक विमर्श का सक्रिय हिस्सा बनाती है।

मृणाल पांडे की "लड़कियाँ" केवल घरेलू अनुभवों की कथा नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज की जड़ पितृसत्तात्मक संरचना का उद्घाटन करती है। तीन बेटियों के बावजूद लड़के की चाह और स्त्रियों के साथ भेदभाव उस मानसिकता को प्रकट करता है जो स्त्री को मात्र "झंझट" या "मुसिबत" समझती है। मंझली का चरित्र यहाँ प्रतिरोध का प्रतीक है। वह घर की मार-डाँट से नहीं डरती, बल्कि प्रश्न उठाती है—"जब तुम लोग लड़कियों को प्यार ही नहीं करते तो झूठमूठ में उनकी पूजा क्यों करते हो? मुझे नहीं चाहिए इन औरतों का हलवा, पूरी, टीका, रूपया, मैं देवी नहीं बनूँगी।" (पांडे 47) यह कथन स्त्री-विमर्श की दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह स्त्री को देवी बनाकर पूजने की मिथ्या परंपरा का पर्दाफाश करता है और स्त्री को मानव रूप में समान अधिकार देने की माँग करता है। इस कहानी में सांस्कृतिक अस्मिता का प्रश्न गहरे रूप में सामने आता है। समाज में स्त्री को देवी, माँ या बहन कहकर पूजा जाता है, लेकिन उसके वास्तविक अधिकारों को छीना जाता है। मंझली इस दोहरेपन को चुनौती देती है। इस संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह अपने ग्रन्थ *"कहानी नई कहानी"* में लिखते है- "मृणाल पांडे की कहानियाँ स्त्री को केवल पीड़िता नहीं दिखातीं, बल्कि उसे प्रतिरोध की सशक्त आवाज़ में बदल देती हैं।" "यदि मुझे शिक्षा का अधिकार नहीं मिला, तो मेरी पहचान अधूरी रहेगी।" यह कथन नायिका की शिक्षा और स्वतंत्रता की आकांक्षा को दर्शाता है। पांडे ने नारी चेतना और सामाजिक संरचना के टकराव को प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत किया है। कहानी में सामाजिक बाधाओं और व्यक्तिगत प्रयास के संघर्ष को मुख्य रूप से उजागर किया गया है।

"चार दिन की जवानी तेरी" कहानी की नायिका एक युवा लड़की है, जो प्रेम और सामाजिक दबाव के बीच अपनी आत्म-खोज की यात्रा करती है। चार दिन की अवधि में वह अपने समाज, संस्कृति और स्त्री की स्थिति को समझने और अपनी पहचान बनाने का प्रयास करती है। "चार दिन की जवानी तेरी, लेकिन इन चार दिनों में मैंने अपने समाज, संस्कृति और स्त्री की स्थिति को समझा।" यह कथन नायिका के आत्म-साक्षात्कार और समाज के दबावों के बीच उसकी जद्दोजहद को दिखाता है। आलोचक मानते हैं कि यह कथन स्त्री की सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतीक है, जो पारंपरिक बाधाओं को चुनौती देता है।

"मैं अपने हृदय की आवाज़ को दबाने नहीं दूंगी।" (पांडे 32) नायिका की यह घोषणा उसकी स्वतंत्रता और स्त्री स्वर को दर्शाती है। आलोचक इसे स्त्री विमर्श और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रतीक के रूप में देखते हैं। "प्रेम ने मुझे मेरे समाज और संस्कृति के प्रतिबिंब दिखाए।" (पांडे 38) प्रेम नायिका के लिए माध्यम बनता है, जिससे वह सामाजिक असमानताओं को पहचानती है। कहानी में नायिका अपने समाज और संस्कृति की सीमाओं के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करती है। यह कहानी दिखाती है कि कनिष्ठ समाजिक नियमों के बावजूद स्त्री अपनी पहचान और अस्मिता बना सकती है। नायिका की आवाज़, उसकी इच्छाएँ और संघर्ष कहानी का केंद्र हैं। यह स्त्री के स्वर, आत्मसम्मान और सामाजिक जागरूकता को उजागर करता है। प्रेम के माध्यम से कहानी समाज में

व्याप्त जातिवाद, लैंगिक असमानता और सांस्कृतिक दबावों को दिखाती है। कहानी यह संदेश देती है कि स्त्री की आवाज़ और उसकी इच्छाएँ समाज और संस्कृति की चुनौतियों के बावजूद महत्वपूर्ण हैं।

इन्द्र बहादुर राय नेपाली आधुनिक कथा-साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उनकी कहानियाँ केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि उसमें संस्कृतिक अस्मिता और स्त्री स्वर के गहरे प्रश्न उभरते हैं। "कटपुतली के मन की कहानी" शीर्षक ही इस गहन प्रतीक को उजागर करता है कि कठपुतली का अपना कोई मन नहीं होता, परंतु जब समाज स्त्रियों और साधारण जन को कठपुतली बना देता है तो उनकी अस्मिता का संकट उत्पन्न होता है।इस कहानी में कठपुतली का प्रतीक इस बात को उद्घाटित करता है कि मनुष्य यदि अपनी संस्कृति, परंपरा और पहचान से कट जाए तो उसका जीवन पराया और दिशाहीन हो जाता है। "कठपुतलीलाई त मन हुँदैन, तर मानिसले आफ्नो मन गुमाउँदा ऊ कठपुतलीभन्दा बढि दयनीय हुन्छ।" (राई 63) ("कठपुतली का तो मन नहीं होता, पर मनुष्य जब अपना मन खो देता है तो वह कठपुतली से भी अधिक दयनीय हो जाता है।") यहाँ राय संकेत करते हैं कि संस्कृति ही मनुष्य की आत्मा है। जब सांस्कृतिक अस्मिता खो जाती है, तब व्यक्ति केवल बाहरी डोरियों से संचालित जीवन जीता है। यह आलोचना आधुनिक उपभोक्तावादी समाज में विशेष रूप से प्रासंगिक है जहाँ लोग अपनी जड़ों और पहचान से दूर जा रहे हैं।

कहानी में स्त्री पात्र अपने जीवन को कठपुतली की तरह देखती है – समाज ने उसके मन को छीनकर उसे मात्र वस्तु बना दिया है। लेकिन भीतर से उसका स्वर प्रतिरोध करता है और स्वतंत्र अस्तित्व की माँग करता है। "म कठपुतली होइन, मेरो आफ्नै मन छ, जसलाई अरूको डोराले होइन, आफ्नै चाहनाले चलाउन चाहन्छु।" (राई 65) ("मैं कठपुतली नहीं हूँ, मेरा अपना मन है, जिसे मैं दूसरों की डोर से नहीं, अपनी इच्छा से चलाना चाहती हूँ।") यह उद्धरण स्त्री अस्मिता का घोष है। यहाँ स्त्री केवल सहनशील पात्र नहीं, बल्कि अपनी पहचान, स्वतंत्रता और इच्छाओं के साथ खड़ी एक सशक्त सत्ता है। कहानी में सांस्कृतिक अस्मिता और स्त्री स्वर एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हैं। कठपुतली का मन न होना केवल सांस्कृतिक बंधनों का प्रतीक नहीं, बल्कि स्त्री परंपरागत दमन का भी रूपक है। लेखक यह दिखाते हैं कि अस्मिता का संकट तब गहराता है जब संस्कृति और समाज स्त्री की इच्छाओं और आवाज़ को दबा देते हैं।

रमेश अधिकारी अपने ग्रन्थ *नेपाली कथासाहित्य र अस्मिताको प्रश्न* में लिखते हैं – "इन्द्र बहादुर राय की कहानियों में अस्मिता का प्रश्न सबसे गहरी संवेदना है। कटपुत्रीका मनको कथा इस संवेदना को सांस्कृतिक और लैंगिक स्तर पर एक साथ प्रस्तुत करती है।" (राई 72) महेश पौडेल का मत है – "राय की स्त्रियाँ केवल पीड़ित नहीं हैं, वे अपने मन की खोज करती हैं और कठपुतली की डोर तोड़ने का साहस दिखाती हैं।" कटपुत्रीका मनको कथा केवल एक स्त्री की करुण कथा नहीं, बल्कि यह पूरी नेपाली समाज की अस्मिता चेतना का प्रतीक है। कहानी यह संदेश देती है कि मनुष्य को कठपुतली न बनकर अपने मन, अपनी संस्कृति और अपनी अस्मिता के साथ जीना चाहिए। इसी में स्त्री स्वर भी शामिल है, जो समाज से अपने अधिकार और स्वतंत्रता की माँग करता हैउनकी कहानियों में सांस्कृतिक अस्मिता, समाज की विडंबनाएँ और विशेषकर स्त्री स्वर गहराई से उभरते

हैं। मेरी दीदी कहानी स्त्री–जीवन की करुणा, संघर्ष और अस्मिता की खोज को संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करती है। इस कहानी में 'दीदी' का पात्र नेपाली सांस्कृतिक जीवन–मूल्यों और सामाजिक परंपराओं का प्रतिनिधित्व करता है। उसका जीवन परिवार, रिश्तों और समाज की अपेक्षाओं में बँधा है। लेकिन इन परंपराओं में उसका अपना 'स्व' खो जाता है। "दीदी आफैंलाई बिर्सेर अरूका लागि बाँचेकी थिइन्।" (राई 68) ("दीदी ने खुद को भुलाकर दूसरों के लिए जीया था।") यह वाक्य दिखाता है कि सांस्कृतिक अस्मिता अक्सर स्त्री के त्याग और सेवा पर आधारित होती है, जहाँ उसकी अपनी पहचान पीछे छूट जाती है। कहानी में दीदी का जीवन त्याग और मौन से भरा है, लेकिन लेखक संकेत करते हैं कि यह मौन ही उसका स्त्री स्वर है – एक ऐसा स्वर जो भीतर से दबा हुआ है, परंतु अपनी अस्मिता की तलाश में है। "दीदीले कहिले पनि आफ्नो पीडा मुखले भनिनन्, तर उनको मौन नै उनको आवाज थियो।" (राई 77) ("दीदी ने कभी अपना दुःख मुख से नहीं कहा, पर उनका मौन ही उनका आवाज़ था।") यह कथन स्पष्ट करता है कि स्त्री अस्मिता केवल मुखर विरोध में ही नहीं, बल्कि मौन और सहनशीलता के भीतर भी विद्यमान है।

मेरी दीदी एक ऐसी कहानी है जो दिखाती है कि सांस्कृतिक परंपराएँ स्त्री को अक्सर परिवार और समाज के लिए 'बलिदान' का प्रतीक बना देती हैं। परंतु इन्द्र बहादुर राय का कथन यह भी है कि इस मौन त्याग के भीतर स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता और अनकहा प्रतिरोध छिपा रहता है। इस दृष्टि से यह कहानी स्त्री विमर्श के लिए महत्त्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ में रमेश अपने ग्रन्थ नेपाली कथासाहित्य र अस्मिताको प्रश्न अधिकारी लिखते हैं – "मेरी दीदी नेपाली समाज में स्त्री अस्मिता के छिपे हुए स्वर को पहचानने वाली कहानी है, जहाँ मौन ही सबसे बड़ा प्रतिरोध बन जाता है।" शारदा शर्मा का मत है – "राय की स्त्रियाँ केवल पीड़िता नहीं हैं, वे अपने मौन और संघर्ष के भीतर अपनी सांस्कृतिक अस्मिता और आवाज़ को खोजती हैं।" मेरी दीदी कहानी स्त्री अस्मिता और सांस्कृतिक अस्मिता के द्वंद्व को उजागर करती है। यह दिखाती है कि दीदी जैसे पात्र केवल दूसरों के लिए त्याग करने वाली नहीं, बल्कि मौन के भीतर अपनी पहचान खोजने वाली स्त्रियाँ हैं। कहानी यह संदेश देती है कि स्त्री की आवाज़ को केवल बाहरी विरोध से नहीं, बल्कि उसके मौन और जीवन–अनुभव से भी सुना जाना चाहिए।

निष्कर्ष :

मृणाल पांडे और इन्द्र बहादुर राय, हिंदी और नेपाली कथा–साहित्य की दो सशक्त आवाज़ें, अपने–अपने समाज की गहरी अंतःकथाओं को उजागर करते हैं। दोनों रचनाकारों ने स्त्री के अनुभवों और सांस्कृतिक अस्मिता के प्रश्नों को कथानक के केन्द्र में रखा है, किंतु उनकी दृष्टि और शिल्प में भिन्नता होते हुए भी समानान्तरता दिखाई देती है। मृणाल पांडे की कहानियों में स्त्री केवल प्रेम या करुणा की प्रतीक नहीं, बल्कि एक सचेत, प्रश्नाकुल और विद्रोही सत्ता है। उनकी रचनाएँ स्त्री के दैनंदिन अनुभवों को सामाजिक–सांस्कृतिक ढाँचे के भीतर रखकर यह प्रश्न करती हैं कि अस्मिता की खोज

केवल परंपरा की पुनरावृत्ति में नहीं, बल्कि उसकी आलोचना और पुनर्संरचना में निहित है। वहीं इन्द्र बहादुर राय की कहानियाँ नेपाली समाज की सामूहिक स्मृतियों और सांस्कृतिक जड़ों से गहरे जुड़ी हैं। उनके यहाँ स्त्री पात्र अक्सर परंपरा के बोझ तले दबे होते हैं, किंतु धीरे-धीरे अपनी आवाज़ और स्वतंत्र अस्तित्व की खोज करते हैं। दोनों लेखकों की कहानियों में सांस्कृतिक अस्मिता महज़ ऐतिहासिक विरासत नहीं, बल्कि जीवंत अनुभव है। पांडे के यहाँ यह अस्मिता आधुनिक शहरी जीवन के द्वंद्व और मध्यवर्गीय स्त्री की उलझनों से जुड़ती है, जबकि राय के यहाँ यह अस्मिता ग्रामीण-सामुदायिक जीवन, सामूहिक परंपराओं और जातीय चेतना से अभिव्यक्त होती है। इस भिन्न सामाजिक परिप्रेक्ष्य के बावजूद, दोनों यह स्थापित करते हैं कि अस्मिता तभी पूर्ण होती है जब स्त्री की आवाज़ को उसके मौन, पीड़ा और प्रतिरोध सहित सुना जाए। आधुनिक प्रासंगिकता में देखें तो ये दोनों लेखक पितृसत्ता, सांस्कृतिक जड़ता और सत्ता-संरचना की आलोचना करते हुए नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। वे दिखाते हैं कि स्त्री की अस्मिता को दबाने वाली संरचनाएँ आज भी नए रूपों में विद्यमान हैं—कभी बाज़ार की उपभोक्तावादी संस्कृति के रूप में, तो कभी परंपरा के नाम पर सामाजिक नियंत्रण के रूप में। इस दृष्टि से उनकी रचनाएँ समकालीन समाज के लिए एक चेतावनी भी हैं और एक वैकल्पिक दृष्टि भी।

अंततः कहा जा सकता है कि मृणाल पांडे और इन्द्र बहादुर राय दोनों ही कथाकार अपने साहित्य में स्त्री स्वर को सांस्कृतिक अस्मिता के विमर्श के साथ जोड़कर उसे व्यापक सामाजिक विमर्श का हिस्सा बनाते हैं। उनकी कहानियाँ केवल साहित्यिक दस्तावेज़ नहीं, बल्कि स्त्री अस्मिता की खोज और आधुनिक मानवता की पुनर्परिभाषा के लिए दिशानिर्देशक ग्रंथ बन जाती हैं।

संदर्भ सूची:

अधिकारी, लोकेन्द्र। *नेपाली कहानी का सामाजिक संदर्भ*। काठमांडू: साजा प्रकाशन, 2015।

अरोड़ा, सुधा। *स्त्री लेखन और समाजिक परिप्रेक्ष्य*। नई दिल्ली: साहित्य अकादमी, 2012।

खेतान, प्रभा। *स्त्री विमर्श और साहित्य*। नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2008।

पांडे, मृणाल. *एक स्त्री का विदा गीत*. राजकमल प्रकाशन, 2010.

---। *धूप का अंश*। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2005।

---। *प्रति नायिका*। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2014।

सिंह, सुधा. *हिंदी कहानी और स्त्री विमर्श*. वाणी प्रकाशन, 2018.

राई, इन्द्र बहादुर। *फूलको आँखमा*। काठमांडू: साजा प्रकाशन, 1995।

---। *रक्ततिलक*। काठमांडू: साजा प्रकाशन, 2002।

---। *अज्ञात*। दार्जीलिंग: अखिल भारतीय नेपाली साहित्य सम्मेलन, 2005।

झा, सुशील कुमार। *तुलनात्मक साहित्य के आयाम* । पटना: ग्रंथ निकेतन, 2017।